औंध में पशुयाग।

गत माघ कृष्ण अमावास्या के दिन औंध में श्री. पं. आहिताग्नि श्री. धुंडिराज गणेश बापट दीक्षित महोदयजीने सोमयाग प्रारंभ किया, जिसकी समाप्ति फाल्गुन शुक्ल अष्टमीके दिन होगई। इस में दो बकरोंका बलिदान होगया।

यह यज्ञ वाई क्षेत्रमें होनेवाला था और इसकी तैयारियां गत वर्षसे हो रहीं थी। परंतु ऋग्वेत्र करने का अधिकार श्री. दीक्षित महोदय जी को नहीं है और उनको याजुष हौत्र करना चाहिये, ऐसी वहांके सब पंडितों की संमति हुई, अतः श्री. दीक्षित जी वहां सोमयाग कर नहीं सके, क्योंकि इनके मनमें ऋग्वेत्र करने का विचार निश्चित हुआ था। इनके पिता और पितामह ने भी ऋग्वेत्र करके ही सोमयाग किये थे। इस लिये इनका आग्रह था कि, ये भी वैसा ही याग करें। इस बात पर पुराण मताभिमानी पंडितों में और श्री. दीक्षित में मतभेद होगया और इसका परिणाम यह हुआ कि श्री. दीक्षित जी वहां अपना याग न करसके।

इस कारण इन्होंने सांगलीमें अपना याग करनेकी तैयारी की। परंतु वहां पशुहिंसा करके यज्ञ करनेके विरुद्ध जनता होनेके कारण वहांसेभी इनका भागना पडा। पश्चात् ये औंध में आगये और उन्होंने अपना याग यहां प्रारंभ किया।

अन्य स्थानोंमें जो विघ्न आगयेथे वैसे विघ्न यहां उत्पन्न होना संभव ही नहीं था। क्यों कि यहां किसीको पता भी नहीं लगा, कि ये क्या कर रहे हैं। यहां इन्होंने इतनी शीघ्रतासे याग प्रारंभ किया कि पक्ष प्रतिपक्ष बननेके लिये समय ही नहीं था। अन्य स्थानोंमें मास दो मास का समय मिलाथा, जिस कारण वहां विवाद बढ गया था। परंतु यहां दो तीन दिनोंमें ही यागका प्रारंभ होगया और प्रतिपक्ष के लिये कोई समय ही नहीं मिला।

इस कारण अन्य स्थानोंके समान

यहां विवाद होनेकी संभावना ही नहीं थी। तथापि किसी बाह्य कारण से कोई विघ्न उत्पन्न न होवे इस लिये यज्ञ मंडप पर संगिनी धारण करने वाले पहारेदार भी रखे गये थे। और यज्ञ समाप्ति तक यह पंहारा रहाथा।

यह कोई नयी बात नहीं है। विश्वामित्र ऋषिके यज्ञ मंडप का संरक्षण श्रीरामचंद्र और लक्ष्मण किया करते थे, यह वर्णन हम रामायणमें पढते हैं। उसी प्रकार का दृश्य किसी कारण किसी स्थानपर हुआ, तो कोई आश्चर्य नहीं है। परंतु यहां आश्चर्य इतना ही था कि, रामायणकाल में यज्ञका विघ्न करनेवाले राक्षस थे और इस समय पुराण मतानुयायी तथा नवीन मतानुयायी विघ्न कर्ता थे।

यज्ञका प्रारंभ करनेके पूर्व श्री. दीक्षित महोदयजीने एक दो व्याख्यान भी यहां दिये और उन व्याख्यानों में कहा कि, यज्ञमें पशुवध करना वैदिक आज्ञाके अनुसार योग्य ही है। इस समय स्वाध्याय मंडल के संचालक श्री० पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर जी यहां नहीं थे, इस लिये इन व्याख्यानों के विरुद्ध कोई आवाज उठा नहीं सके। वास्तव में ये व्याख्यान जनता को अपने अनुकूल करनेके लिये ही दिये गये थें, परंतु जब लोगोंने सुना कि, यहां ये बकरोंका बलिदान देने वाले हैं, तो सब जनता इनके विरुद्ध हुई! अर्थात् यहां भी दीक्षित महोदय जीने स्वयं अपने ही प्रयत्नसे विरोधी पक्ष को खडा कर दिया। परंतु यह विरुद्ध पक्ष मूक था, क्यों कि शास्त्र प्रमाणोंसे युक्ति वाद करने के लिये कोईभी तयार नहीं था।

पूर्वोक्त समयपर यज्ञका प्रारंभ हुआ। इस समय श्री० पं० श्रीपाद दामोदर जी मथुरा शताब्दी के महोत्सव के लिये गयेथे। यज्ञके तृतीय दिन वे यहां स्वाध्याय मंडलमें लौट आये। जिस समय उनको इस याग का पता लगा। सब वृत्तांत के पता लगने पर श्री० दीक्षितजीको आव्हान दिया गया। परंतु शास्त्रार्थ करने के लिये उसी समय वे सिद्ध नहीं हुए। "यज्ञ समाप्त करने पर शास्त्रार्थ होगा" यह उत्तर यज्ञकर्तासे मिला। इस प्रकार शास्त्रार्थ की आशा नहीं रही।

यज्ञमें दिनके समय हवनादि होता था और रात्रीके समय "धर्म चर्चा" होती थी। इस धर्म चर्चा में अपना मत प्रतिपादन करनेके लिये अवसर मिलनेकी प्रार्थना की गई, परंतु वैसा अवसर भी दिया नहीं गया। आज्ञा देना या न देना यह पूर्णतासे श्री० दीक्षितजीके आधीन था, इस लिये उनकी आज्ञा ही इस मंडपमें अंतिम प्रमाण थी।

अंतमें छठे दिन सायंकाल को एक बकरेका बलिदान हो चुका। उस रात्री

को वास्तवमें धर्म चर्चा बंद ही थी, परंतु प्रयत्न करनेपर इस रात्रीके समय अपना मत सभाके सन्मुख रखने के लिये श्री० पं. श्रीपाद दामोदर जी को अवसर प्राप्त हुआ। सब सभासद, नागरिक और अन्य स्त्री पुरुष उपस्थित होनेपर उनका जो व्याख्यान हुआ उसका आशय यह है –

यज्ञका महत्व।

आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

यजुर्वेद. २२।२२

याजक यह प्रार्थना यज्ञमें करता है, इसका अर्थ यह है कि--" हे (ब्रह्मन्) परमात्मन्! हमारे राष्ट्रमें ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण उत्पन्न हो, हमारे राष्ट्रमें उत्तम शूर क्षत्रिय हों, तथा अधिक दूध देनेवाली गौवें, बलवान बैल, ज्ञानी स्त्रियां विजयी तथा सभामें पंडित युवक बनें। योग्य समयमें हमारे राष्ट्रमें वृष्टि होती रहे, ओषधियां फलयुक्त हों और हम सबका योगक्षेम उत्तम रीतिसे चले।"

इस याजक की प्रार्थनासे ही यज्ञके महत्व का पता लग सकता है। यज्ञका संबंध जनताके साथ है, राष्ट्रके साथ उसका संबंध है, तात्पर्य यज्ञ संस्था वैयक्तिक अथवा खानगी नहीं है। यहां जिस समय मैंने शास्त्रार्थ के लिये आव्हान किया था, उस समय श्री० दीक्षित महोदयजीने कहा कि " यह यज्ञ मेरा खानगी यज्ञ है, इसमें मेरे अनुकूल जो होंगे वेही आसकते हैं. अन्य नहीं।" इस के उत्तर में निवेदन है कि यह यज्ञ हमेशा सार्वजनीन अथवा राष्ट्रीय यज्ञ है, न कि खानगी। उक्त मंत्र की प्रार्थना ही देखिये कि उसमें सार्वजनिक भाव कितनी गंभीरतासे भरा है। इस लिये कोई यह न समझे कि यज्ञ खानगी है और इस में मैं किसीको प्रतिबंध कर सकता हूं। वेदमें अन्यत्र—

पंचजना मम होत्रं जुषन्ताम्॥

यजु.

" ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और निषाद भी मेरे यज्ञमें आवें " ऐसा ही कहा है। अर्थात् धर्मचर्चा करने की इच्छासे यदि कोई विद्वान इस यज्ञमें आना चाहता है तो उसको कोई प्रतिबंध कर नहीं सकता।

मैं जो यहां अब वक्तृत्व करना चाहता हूं वह यज्ञसंस्थाके रक्षणार्थ बोलना चाहता हूं। यज्ञसंस्था वैदिक धर्म

का प्राण है । यह प्रायःलुप्त हो चुकी है। कोई कोई किसी किसी समय यज्ञ करने के लिये प्रवृत्त होते हैं । ऋषिकालमें ये यज्ञ हमेशा हुआ करते थे और इन यज्ञोंसे उनको लाभ भी होता था। राष्ट्र-का हित साधन करनेके लिये ये यज्ञ प्राचीन कालके आर्यलोग किया करते थे । आज भी ये यज्ञ राष्ट्रहित साधक रीतिसे किये जा सकते हैं । परंतु इनकी विधिमें देश काल वर्तमान के अनुसार संशोधन होना आवश्यक है ।

तथा वैदिक यज्ञ कर्ममें सूत्र कालमें जो यज्ञ प्रक्रियाओं की वृद्धि होगई है, उनका योग्य विचार होना चाहिये कि इन में योग्य कौनसा विधि है और अयोग्य विधि कौनसा है । यह यज्ञसंस्था जिनके आधीन इस समय है वे लोक अंधपरंपरा के अभिमानी होने के कारण ही यह संस्था प्रायः लुप्त होने तक अवस्था पहुंच चुकी है ।

यह यज्ञ संस्था प्राचीन कालमें अनेक आवश्यक कार्योंके लिये प्रयुक्त की जाती थी । अपना और नागरिकों का आरोग्य वर्धन , रोगोंका दूरीकरण , अभीष्ट पुत्र की प्राप्ति, बल वर्धन, योग्य समय में योग्य वृष्टि करनी, राष्ट्र की उन्नति आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्यों के लिये ये यज्ञ किये जाते थे । इतना ही नहीं प्रत्युत शत्रुका पराजय करनेके लिये भी विशिष्ट यज्ञ रचे जाते थे । तथा शत्रु राष्ट्रमें बीमारियां फैलानेके लिये भी यज्ञका प्रयोग किया जाता था । अर्थात् अपना हित और शत्रुकी हानि करनेके कार्य में यज्ञका उपयोग भी किया जाता था ।

इस समय यज्ञका शास्त्र बहुतही बढ गया था और पूर्ण हो चुका था, इसका एक अंश भी इस समय रहा नहीं है । जो वैदिक धर्म के प्रेमी हैं उनको इस विषयकी खोज इस दृष्टिसे करनी चाहिये ।

यज्ञसंस्था अत्यंत प्रभाव शाली है, इसी लिये उसका उपयोग बडी साव-धानतासे होना चाहिये । जो शस्त्र अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभाव शाली होता है उसका उपयोग भी बडी चतुरता से करना चाहिये अन्यथा हानि होने में कोई शंकाही नहीं ।

इस समय जो यज्ञ यहां चलरहा है उस विषयमें भी हम यही कह सकते हैं कि यदि इसमें त्रुटी होगई तो बडा अनर्थ होना संभव है । इस लिये इस विषय की विशेष चर्चा होना अत्याव-श्यक है ।

यज्ञ विधिमें कई बातोंका विचार करना आवश्यक है, परंतु इस समय हम यज्ञमें पशुवध करने की आवश्यकता है वा नहीं, इसी विषयका विचार करना चाहते हैं। अन्य प्रसंगों में अन्य बातोंका विचार करेंगे। श्री. दीक्षित जी जो इस यज्ञके यजमान हैं उनका यह पक्ष है कि सोमयागमें

पशु बलि आवश्यक है। हमारा इस विषयमें मतभेद है।

वैष्णव संप्रदाय के बडे बडे आचार्योंने पशुबलि का खंडन और पिष्टपशु का मंडन किया है। पिष्टपशु विधिमें केवल आटेका ही हवन होता है। अर्थात् जितना वैष्णव संप्रदाय प्राचीन है उतना ही पशुबलिका खंडन प्राचीन है। इस लिये यज्ञीय पशुहिंसा निषेध करनेवाला पक्ष आज का नहीं है परंतु सहस्रों वर्षोंके पूर्व कालका यह पक्ष है। कई श्रौत-कर्म करनेवाले इस विचारको स्वीकारते नहीं और यज्ञमें पशुका वध करते हैं। इस लिये इस का विचार अधिक सूक्ष्म दृष्टिसे होना चाहिये।

यज्ञके नाम।

संस्कृत में हरएक नाम सार्थ होता है। यदि यज्ञमें पशुहिंसा आवश्यक होगी तो पशुवध का अर्थ बतानेवाला नाम यज्ञके पर्याय नामोंमें होना चाहिये। परंतु वैसा नहीं है देखिये "यज्ञ" शब्द-

(१) देवपूजा, (२) संगति करण और (३) दान, ये तीन इस शब्दके अर्थ हैं। देवताओंका सत्कार करना, जनतामें संगति अर्थात् एकी करण करना, और परोपकार करना ये इस शब्दके अर्थ हैं। जनता के संगति करण का भाव राष्ट्रीय दृष्टिका महत्त्व पूर्ण भाव है और यह सूचित करता है कि यज्ञसंस्था सचमुच राष्ट्रीय संस्था है।

दूसरा यज्ञ वाचकशब्द "प्रजा-पति" है। प्रजा पालनका कर्तव्य यह बता रहा है। संपूर्ण जनता के पालन का संबंध होनेसे यह शब्द राष्ट्रीय भावना ही प्रबलतासे बता रहा है।

यज्ञके पर्याय शब्द निघण्टु ३।७ में दिये हैं। यहां यज्ञनामों में "अ-ध्वर" शब्द है। इसका अर्थ "अ—हिंसा" ही है। "ध्वर" शब्द हिंसा वाचक है उसका निषेध करनेवाला अध्वर है। इसी "अध्वर" शब्दसे "अध्वर्यु" शब्द बनता है और यह अध्वर्यु यज्ञके याजकों में प्रमुख है। अहिंसामय कर्मोंको जो करता है वही अध्वर्यु होता है। यजुर्वेदका नाम भी अध्वरवेद है अर्थात् अहिंसामय कर्मका उपदेश करनेवाला वेद। ये शब्द देखने से यज्ञमें हिंसा का अभाव ही प्रतीत होगा।

यज्ञ वाचक शब्द वेदमें बहुत हैं, उन में "मेध" एक शब्द है जिसमें "हिंसा" का अर्थ अल्प अंश से है। नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजमेध इन शब्दोंमें उक्त प्राणियोंकी हिंसा अभीष्ट है ऐसा श्रौत कर्म करने वालों का पक्ष है परंतु-

नृयज्ञो अतिथिपूजनम् ॥

मनुस्मृति।

"नृयज्ञ, नरमेध का अर्थ अतिथि-पूजन ही है" यदि नरयज्ञ अतिथिपूजन है तो अश्वयज्ञ, गोयज्ञ, अजयज्ञ ये भी

अश्व, गो और अज के पूजन रूप ही होना संभव है। इनमें बलिकी कल्पना सर्वथा अनुपपन्न है। "गृहमेध, पितृमेध" आदि शब्द भी "गृह पूजा, पितृपूजा" आदि भाव ही बता रहे हैं।

तात्पर्य यज्ञवाचक शब्दोंका भाव बलिदानमें नहीं है प्रत्युत उनके सत्कार में है।

हिंसाका प्रतिकार।

हिंसाका प्रतिकार करनेके लिये पंच महायज्ञ किये जाते हैं यह सब जानते ही हैं, देखिये—

> पंच सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनीचोदकुंभश्च बध्यते यासु वाहयन् ॥ ६८ ॥
> तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः। पंच कृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥
> अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥ होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥
>
> मनुस्मृति अ. ३

"गृहस्थको ये पांच वस्तु हिंसामूल हैं चूल्हा, चक्की, बुहारी, उलूखल मुसल, उदक का घडा, इन पांचोंके कारण जो हिंसा होती है उसकी निवृत्ति करने के लिये (ब्रह्मयज्ञ) अध्यापन, (पितृयज्ञ) पितरों की तृप्ति, (देवयज्ञ) होम हवन, (भूतयज्ञ) अन्न का बलि अर्थात् प्राणियोंके लिये अन्नदान, (नृयज्ञ) अतिथि सत्कार ये पांचयज्ञ करने चाहिये।"

चूल्हा चक्की आदि आवश्यक कर्मों में भी जो हिंसा होती है उसका निराकरण करनेके लिये पूर्वोक्त पंच महायज्ञ करनेका उपदेश धर्मग्रंथ कर रहे है, इस से स्पष्ट होता है कि जहांतक हो सके वहांतक हिंसा न करने का उद्देश ही वैदिक धर्मशास्त्र मनुष्योंके सन्मुख रखता है। इस लिये भूतयज्ञ के बलि शब्दसे पशुवध करना अथवा अजमेधादिमें पशुहिंसा की कल्पना करना सर्वथा असंगत है। जो लोग चक्की की हिंसा दूर करनेके लिये उपाय मानकर एक यज्ञ करेंगे उसमें भी फिर हिंसा की कल्पना करनी युक्तियुक्त कदापि नहीं है। मूल वैदिक धर्मका तत्व अहिंसा सिद्धि के लिये ही साधक है यह बात यहां स्पष्ट हो जाती है। देखिये श्रुतिका उद्देश्य क्या है—

> यजमानस्य पशून् पाहि। यजु. १।१
> गां मा हिंसीः ॥ ४३ ॥ इमं मा हिंसीः द्विपादं पशुं ॥ ४७ ॥ इमं मा हिंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ॥ ४८ ॥ घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः ॥ ४९ ॥ गवयं मा हिंसीः ॥ इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। मा हिंसीः ॥ यजु. १२

" यजमानके पशुओंका रक्षण कर। गाय, द्विपाद पशु, घोडा, बकरा आदि

की हिंसा न कर " तथा—

ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं॰ हिंसीः ॥ यजु. ४

" हे घास ! तू इसको बचा और हे शस्त्र ! तू इसकी हिंसा न कर। " इत्यादि मंत्र स्पष्टतासे अहिंसा का ही उपदेश कर रहे हैं। ये यजुर्वेदके मंत्र यजुर्वेद का भाव ही व्यक्त कर रहे हैं। अतः इन मंत्रोंके तात्पर्यसे ही अन्य मंत्रों का तथा ब्राह्मणोक्त विधिका अर्थ देखना योग्य है। ब्राह्मणग्रंथभी यही अहिंसाका भाव कंठरवसे कह रहे हैं।—

पुरुषं ह वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे।
तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम।
सोऽश्वं प्रविवेश। तेऽश्वमालभन्त।
तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम।
स गां प्रविवेश। ते गामालभन्त।
तस्यालब्धाया मेधोपचक्राम।
सोऽविं प्रविवेश। तेऽविमालभन्त।
तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम।
सोऽजं प्रविवेश। तेऽजमालभन्त।
तस्यालब्धस्य मेधोपचक्राम। स इमां पृथिवीं प्रविवेश। तं खनन्त इवान्वीषुः। तं अन्वविंदन्। तौ इमौ व्रीहियवौ॥ स यावद्वीर्यवद्ध ह वा अस्य एते सर्वे पशव आलब्धाः स्युः तावद्वीर्यवद्धास्य हविरेव भवति। य एवमेतद्वेद। अत्रो सा संपद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति।
शतपथ ब्रा. १।२।३।६ ९॥

" (१) प्रारंभमें देवोंने पुरुषका बलिदान दिया। उसी समय उससे पवित्र भाग चलागया और वह घोडेमें प्रविष्ट हुआ। (२) उन्होंने घोडेको मारा, मारते ही उससे पवित्र भाग चला गया और वह गौ में प्रविष्ट हुआ। (३) उन्होंने गौका बलिदान किया, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया, और वह मेंढेमें चला गया, (४) उन्होंने मेंढेको मारा, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह बकरे में प्रविष्ट हुआ। (५) उन्होंने बकरेको मारा, उसी समय उससे पवित्र भाग चला गया और वह इस पृथ्वी में प्रविष्ट हुआ। (६) वे देव खोदने लगे भूमि खोदनेसे उनको चावल और जौ प्राप्त हुए। (७) इन चावल और जौ से जो हवि किया जाता है। उसका वीर्य और बल उतना ही होता है कि जितना वीर्य पूर्वोक्त हवियोंका होता है। "

यह शतपथ का कथन स्पष्ट है। पहिले देवोंने मनुष्य, घोडा, गाय, मेंढा और बकरा ये पांच पशु बलिरूपमें अर्पण किये। परंतु उनमेंसे हवनीय भाग चला गया और वह अंतमें भूमिमें स्थिर रहा। यही भाग धान्य रूपसे ऊपर आगया। इसलिये बीजोंका अर्थात् धान्योंका हवन करना चाहिए।

धान्योंका हवन करनेसे हवनीय भाग काही हवन हो सकता है, परंतु पूर्वोक्त

पशुओंका हवन करनेका यत्न करनेसे उनमें हवनीय भाग प्राप्त ही नहीं होता। जो हवनीय भाग पशुओंके वधसे देवोंको प्राप्त नहीं हुआ वह साधारण मनुष्य पशु-शरीरसे प्राप्त कर सकते हैं ऐसा कहना अयोग्य ही है, क्यों कि ऐसा होनाही असंभव है। तात्पर्य उक्त शतपथ वचन का भाव यही है कि इसके पश्चात् धान्य, आटा आदिका ही हवन होना योग्य है।

ऐतरेय ब्राह्मण में भी यही वचन है, इस लिये वह वचन फिर यहां देनेकी आवश्यकता नहीं है। पशुके अंगोंकी परिभाषा भी आटेके गोलेके भागोंके साथ बताई है वह यहां देखिये-

पारिभाषिक शब्द।

यदा पिष्टान्यथ लोमानि भवन्ति। यदाप आनयति अथ त्वग्भवति। यदा संयौत्यथ मांसं भवति। संतत इवहितर्हि भवति संततमिव हि मांसं। यदाशृतोऽथास्थि भवति। दारुण इवहि तर्हि भवति। दारुणमित्यास्थि। अथ यदुद्वासयन्नभिघारयति तं मज्जानं ददाति। एषो सा संपद्यदाहुः पांक्तः पशुरिति॥

शत. ब्रा. १।२।३।९

१ जो आटा होता है वह लोम किंवा रोम हैं।

२ जब उसमें पानी मिलाते हैं तब वह चमडा होता है क्यों कि चमडेके समान वह नरम होता है।

३ जब गूंधा जाता है तब वही मांस होता है क्योंकि वह बहुत चिकनासा होता है।

४ जब वह तपाया जाता है तब उसका नाम अस्थि है। क्योंकि हड्डी सख्त होती है।

५ जब उसमें घी डाला जाता है तो उसका नाम मज्जा होता है।

इस प्रकार पशुके पांच भाग आटेसे ही होते हैं। यज्ञ की विधिमें जहां लोम, त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा ये पांच नाम आवेंगे वहां वहां पशुके भाग अभीष्ट नहीं हैं, परंतु आटेके इस प्रकार बनाये हुए भाग अभीष्ट हैं। यह परिभाषा ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रारंभ में ही दी है। यह प्रारंभमें इसी लिये दी है कि आगे यज्ञ विधिके समय इन पारिभाषिक शब्दोंका उपयोग करके ही यज्ञ विधि बनाया जावे। जो लोग यह परिभाषा नहीं देखेंगे, उनका विधि ठीक नहीं होगा। क्यों कि ब्राह्मण ग्रंथोंमें स्पष्ट कहा है-

पशवो वा इळा॥ ऐ. ब्रा. १।२।१०।

पशुभ्यो वै मेध उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजेयाताम्॥

ऐ. ब्रा. २।२।११

(१) भूमि ही पशु है क्यों कि (२) पशुओंसे मेध्य हवनीय भाग चला गया जो भूमिसे ही चावल और जौ के रूपसे ऊपर आया है।

यह ब्राह्मण ग्रंथोंमें इसलिये कहा होता है कि अब पशुका बलिदान कोई न करे और चावल तथा जौ के आटेका ही बली दिया करें। प्राचीन लोगोंने मनुष्य, घोडा, गाय, मेंढा और बकरा इन पांचोंका बलिदान करके अनुभव लिया, उस परीक्षण के समय उनको यह अनुभव हुआ कि प्राणियोंका वध करनेके पश्चात् उनके शरीरसे मेध्यभाग प्राप्त नहीं होता। अतः उनका वध व्यर्थसा हो जाता है। जो मेध्य भाग हवन में अभीष्ट है वह उक्त धान्य में प्राप्त होता है। धान्यमें मेध्य भाग अनायाससे प्राप्त होता है और पशुके शरीरसे मेध्य भाग प्रयत्न सेभी प्राप्त नहीं होता। इसलिये पशुबलिसे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। जो अभीष्ट है वह सब धान्यके हवन सेही होता है।

हरएक यज्ञकर्ताको यह ब्राह्मण ग्रंथका उपदेश वचन विचार करके देखने योग्य है।

यज्ञका उद्देश्य।

भैषज्ययज्ञा वा एते। तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसंधिषु व्याधिर्जायते॥ गो. ब्रा. उ प्र. १।१९॥
ओषधीष्वेव यज्ञं प्रतिष्ठापयति। गो. ब्रा. उ. प्र. २।१३ ॥पशवो वै धानाः॥ गो. ब्रा. उ. प्र. ४।६

(१) ये यज्ञ औषधियोंके ही यज्ञ हैं, इसी लिये ऋतु के संधिसमयमें किये जाते हैं क्यों कि ऋतुके संधिसमयमें ही व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

(२) औषधियोंमें ही यज्ञ प्रतिष्ठित होता है।

(३) धान्य ही पशु है।

इस गोपथ ब्राह्मण के वचन में यज्ञ का उद्देश्य स्पष्ट बताया है। ऋतुसंधिके समय व्याधि उत्पन्न होती है और जनता को बडा कष्ट भोगना पडता है, इसलिये राष्ट्रके हितके लिये ऋतु संधियोंमें यज्ञ किया जाता है। यज्ञ विधिमें पशु शब्द का अर्थ एक प्रकारका धान्य ही है। अर्थात् कोई इस भ्रममें न रहे कि यज्ञविधिमें पशु और उसके अंगोंके नाम आगये इस लिये वहां पशुही अभीष्ट है। गोपथ ब्राह्मण में स्पष्ट ही कहा है कि एक प्रकारका धान्य ही पशु शब्दसे लेना चाहिये। अस्तु। इस प्रकार यह बात अब स्पष्ट होगई। अब इतिहास ग्रंथोंकी साक्षी देखिये—

महाभारतकी साक्षी।

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृशरौदनम्। धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥ १० ॥ मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्।विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः ११पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् यज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः।१२

म. भारत. शांति.

" सुरा, मत्स्य, मद्य, मांस, आसव आदि सब व्यवहार धूर्तोंका किया हुआ है। यह वेदोंमें नहीं है। मान, मोह, लोभ, अथवा जिह्वाकी लुब्धता आदिसे यह बनाया गया है। वास्तव में सच्चे ब्राह्मण संपूर्ण यज्ञोंमें एक (विष्णु) व्यापक परमात्माकी ही पूजा करते हैं और मनोहर पायससे उसका यजन करते हैं तथा वेदोंमें कहे यज्ञीय वृक्ष जो हैं उनकी समिधाओंका उपयोग करते हैं।

यह महाभारतकी साक्षी है। व्यास भगवान् वेदका आशय यहां बताते हैं कि यज्ञोंमे पायस का हवन है, न कि मांसादिक का हवन इष्ट है। तथा और देखिये—

> बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वा वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ॥
>
> म. भारत. शांति. ३३७

" (१) बीजोंसे यज्ञमें यजन करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है। (२)अज संज्ञक बीज होते हैं इसलिये बकरेका हनन करना योग्य नहीं है (३)जिस कर्ममें पशुका हनन हो वह सज्जनों का धर्म नहीं है। "

इस वचनमें व्यास भगवान् का स्पष्ट तात्पर्य है कि सज्जन जो यज्ञ करते हैं उसमें पशुवध करना अभीष्ट नहीं है। वैदिक श्रुतिका आशय यह है कि बीजों और धान्योंका हवन यज्ञमें होवे, पशुमांसके हवन के लिये वेदकी श्रुतिमें प्रमाण नहीं है। महाभारत स्पष्ट शब्दों में यज्ञमें पशुवधका निषेध कर रहा है। तथा और देखिये—

> तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ॥३३॥ बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह। प्रजापति सुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः ॥३४॥ ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्ड्यश्चैव महानृषिः। ऋषिः शांतिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्च यः ॥३६॥ ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्रपिता स्मृतः। आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च एते षोडश ऋत्विजः ॥ ३७ ॥ संभृताः सर्वसंभारास्तस्मिन् राजन्महाक्रतौ ॥ न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवास्थितोऽभवत् ॥ ३८॥
>
> म० भारत शांति०

" उस राजाका बडा भारी अश्वमेध हुआ। उसमें बृहस्पति उपाध्याय होता था, प्रजापतिके पुत्र सदस्य बने थे, मेधातिथि, ताण्ड्य, शांति, वेदशिराः, कपिल, कठ, तैत्तिरि, आदि बडे बडे ऋषि उस यज्ञमें ऋत्विज बने थे। उस यज्ञमें सब सामग्री विपुल इकट्ठी की थी, परंतु वहां एक भी पशुका वध नहीं हुआ था। " अर्थात् पशुवध के विनाही यह अश्वमेध हो गया था। यदि अश्वमेध पशुवधके विना हो सकता है तो क्या अजमेध नहीं हो सकता ?

देवी भागवत की साक्षी ।

पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशा-
दिभिः किल ॥ ३४ ॥
देवी भा. १। ३

" केवल पुरोडाश से ही अर्थात्, पशुघात न करते हुए ही, अनेक यज्ञ किये गये थे ।"

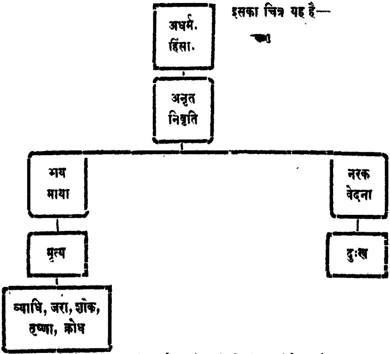
यह देवी भागवत का कथन यहां मनन करने योग्य है। महाभारत के कथन के साथ इसकी संगति लगानेसे पशुवध रहित यज्ञ का भाव स्पष्ट प्रतीत होता है।

हिंसाकी संतति ।

अब हिंसा की संतति भी प्रसंगसे यहां देखने योग्य है

हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे त-
थाऽनृतम्।कन्या च निकृतिस्ताभ्यां
भयं नरकमेव च ॥ २९ ॥माया च
वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः ।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूताप-
हारिणम् ॥ ३० ॥ वेदना स्वसुतं
चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च
जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ विष्णु पु. १। ७

इसका चित्र यह है—



यह अधर्म और हिंसाकी संतति है। यज्ञमें जो हिंसा करते हैं उनकी यही गति होगी इस लिये इनको इस भयानक परिणाम का ख्याल रखना योग्य है।

यज्ञमें प्रतिनिधि।

भावः इस समय प्रतिनिधि सेही यज्ञ किया जाता है। जो यज्ञ यहां हो रहा है उसका नाम 'सोमयाग' है, परंतु आश्चर्य की बात यह है कि इसमें "सोमवल्ली" ही नहीं है, सोमकी उपस्थिति जहां नहीं और उसके स्थानपर जो दूसराही पदार्थ लिया गया है, तो इस यागको "सोमयाग" किस प्रकार कहा जाता है। और यदि मुख्य सोमवल्ली का कार्य प्रतिनिधिसे ही लिया जाता है, तो क्या पशुके स्थानपर प्रतिनिधि जो पूर्वस्थलमें कहा है नहीं लिया जा सकता?

इसी यज्ञ में कई इष्टियां संक्षेपसे, कई प्रतिनिधिसे और कई संकेतसे की गई हैं। यदि यह अवस्था है तो केवल बकरा मारनेका ही आग्रह क्यों किया जाता है? पशुके स्थानपर पुरोडाश का हवन ब्राह्मण ग्रंथमें स्वीकारित हो चुका है, इसलिये यदि आप वही करेंगे तो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं होगा।

इसलिये सब उपस्थित पंडितों विद्वानों और शास्त्रियोंको मेरा अह्वान है कि वे इसका विचार करें अथवा यदि उनका आग्रह है तो शास्त्रार्थ करनेके लिये सिद्ध हों। मैं यहां इस विषयपर शास्त्रार्थ करनेके लिये सिद्ध हूं।।"

इस प्रकार श्री० पं० श्रीपाद दामोदर जीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका परिणाम श्रोताओंपर अच्छा होगया व्याख्यानके अंतमें आह्वान देनेके कारण उपस्थित पुराणमताभिमानी विद्वानोंको उत्तर देना अत्यावश्यक हुआ। इस लिये उपस्थित विद्वानोंकी संमतिसे श्री. पं. श्रीधर शास्त्रीजी पाठक, डेकन कालेज पूनाके शास्त्राध्यापक, उत्तर देनेके लिये खडे हुए। उन्होंने कहा कि—

"यह पूर्व पक्ष उत्तम प्रकार से किया गया है। इसमें कोई दोष नहीं है। यद्यपि मैं इनके हरएक प्रमाणका उत्तर दे सकता हूं तथापि इसी समय हममेंसे कोईभी शास्त्रार्थ करनेके लिये तैयार नहीं है। इसकी तैयारी करनी चाहिये। अध्यक्ष की योजना करनी चाहिये और नियम बनाकर तदनुकूल शास्त्रार्थ करना चाहिये शेष मैं इतना कहता हू कि इतने प्रमाण सुननेपर भी पशुयाग के विषयमें मेरा अपना मत वैसा ही स्थिर है जैसा कि पहिले था। क्यों कि इनके दिये सब प्रमाणोंसे हमारा पशुयागका ही मत सिद्ध होता है, न की पूर्वपक्षकर्ता का, इसलिये हम इनका आह्वान स्वीकार करते हैं और अवश्य शास्त्रार्थ करेंगे।"

इस उत्तर के पश्चात् पं० श्रीपाद दामोदरजीने कहा कि, 'यदि अध्यक्ष केवल सभाका नियमन करनेवाला ही होगा, तो एक अध्यक्ष पर्याप्त है, परंतु यदि निर्णय करनेवाला अध्यक्ष निश्चित करना हो, तो तीन अध्यक्षों का निर्वाचन होना चाहिये। और तीन अध्यक्ष मिल

जो संमति देंगे, वही सबको माननी होगी। दूसरी बात यह है कि यह सब शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो और शास्त्रार्थ समाप्त होनेके पश्चात् उपस्थित विद्वानों के हस्ताक्षर होकर सब का प्रकाशन किया जावे।"

उपस्थित सज्जनोंने इस बातको एकमत से स्वीकृत किया। दूसरे दिन पुनः शास्त्री और पंडितों की सभा हुई। इसमें निश्चय यह हुआ कि, "काशी, कलकत्ता, प्रयाग, पंजाब, कश्मीर, गुजराथ, मैसुर, तैलंग, मद्रास, त्रावणकोर, महाराष्ट्र और मुंबई प्रांतोंसे अच्छे विद्वान यहां बुलायें जांय और इनके द्वारा यह शास्त्रार्थ निभाया जाय आगामी चैत्र अथवा वैशाख में शास्त्रार्थ शुरू किया जाय और तबतक पूर्वोक्त स्थानोंसे विद्वान बुलानेका तथा अन्य आवश्यक कार्य किया जाय। तथा इस कार्यके लिये पांच सहस्र रु० का व्यय मंजूर किया जाय।"

इस शास्त्रार्थ सभाके मंत्री श्री. दीक्षित जी होंगे कि जिन्होंने यह यज्ञ किया। अर्थात् ये इसी समयसे इस कार्य को प्रारंभ करेंगे।

अब अपना विचार ।

अब अपना विचार करना चाहिये। स्वाध्यायमंडलके प्रतिनिधि श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर जी ने शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। और आह्वान स्वीकृत भी हो चुका है। भारतवर्षके संपूर्ण विद्वान इस औंध नगरमें थोडेही समयमें उपस्थित होंगे और प्रतिपक्षसे शास्त्रार्थ की तैयारी ऐसी होगी कि जैसी किसी समय नहीं हुई होगी। कार्यव्यय के लिये ही करीब पांच सहस्र रु० व्यय करना मंजूर हुआ है। काशी आदि स्थानके प्रसिद्ध विद्वान यहां पधारेंगे। यह सब अब निश्चित हो चुका है। इस महान कार्यके लिये स्वाध्यायमंडल कोभी तैयार होना चाहिये।

परंतु धनहीन स्वाध्यायमंडल कहांतक इसमें कृतकार्य हो सकता है? जहां पैसेका व्यय आवश्यक है वहां केवल बुद्धिसे कार्य चलना असंभव है। दूसरे पक्ष के विद्वानोंने कितने बडे युद्धकी तैयारी की है इसका पता पूर्व लेखसे ही पाठकोंको लग सकता है।

इस समय यदि पाठक गण स्वाध्याय मंडल की आर्थिक सहायता करेंगे तो ही यह कार्य अंततक पहुंचाया जा सकता है। अन्यथा स्वाध्यायमंडलका मत शुद्ध होनेपर भी इतने बडे प्रतिपक्षके सन्मुख फीका ही रहेगा। इस समय हमें निम्नलिखित बातोंकी तैयारी सबसे प्रथम करनी चाहिये। इनके लिये व्यय आदिका अंदाजा नीचे दिया जाता है—

कार्य और व्यय।

१ वैदिक यज्ञ पद्धति के विषयमें एक विस्तृत और परिपूर्ण

पद्धति तयार करनी।

पुस्तक लिखने का व्यय रु० ६००)

२ उक्त पुस्तक की छपाई १५००)

३ पांच पंडित पंजाब और
युक्त प्रांत से बुलानेका व्यय ५००)

४ यहां वैदिक यज्ञपद्धतिसे बृहत्
यागका अनुष्ठान करनेके लिये घृत
हवन सामग्री आदिके लिये व्यय ५००)

कुलव्यय ३१००)

करीब तीन हजार रु. का व्यय होग इसमें पुस्तक की लिखाई छपाईका व्यय पहिले इकट्ठा होना चाहिये क्यों कि यह पुस्तक शास्त्रार्थके पूर्व ही तैयार होनी चाहिये। देरी लगनेसे उतना लाभ नहीं होगा। इस कारण जो लोग इसमें सहायता देना चाहते हैं अतिशीघ्र भेज दें। अन्य व्यय पीछेसे आवश्यक हैं। कार्यकी महत्ता देखकर पाठक गण इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करेंगे ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

हमारा शास्त्रार्थ विषयक ग्रंथ लिखनेका कार्य प्रारंभ होगया है। आवश्यक श्रौतग्रंथ मंगवाये गये है। प्रतिदिन व्यय हो रहा है। इसलिये सहायता जितनी शीघ्र आ जायगी उतनी अधिक उपयोगी है।

जो जो कार्य होगा और जो जो सहायता आवेगी वह सब वृत्तपत्रों में प्रसिद्ध की जायगी और प्रतिमास इस वै. धर्म में भी प्रसिद्ध की जायगी।

आशा है कि अब पाठक वर्ग इस जिम्मेवारीको समझकर यथा समय शीघ्रही उचित सहायता करेंगे और यशके भागी होंगे।

मैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ इंद्रियाणि हयान्याहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥

कठ. उ. १। ३

मैं कौन हूं, मैं कैसा हूं, मेरी योग्यता किस उपायसे उच्च हो सकती है, यह विचार हरएक को करना चाहिये।

यह विचार करनेके लिये कठ उपनिषद्में जो सुगम उपाय बताया है वह ऊपर के श्लोक में दिया है। यदि पाठक



इसका विचार और मनन करेंगे तो उनकी उन्नति निःसंदेह शीघ्र ही हो सकती है।

उक्त उपनिषद् मंत्र का अर्थ यह है–

(१) अपने आत्माको रथी अर्थात् रथमें बैठने वाला वीर समझ,

(२) शरीर को रथ मान,

(३) बुद्धि को सारथि जान,

(४) मनको लगाम अनुभव कर,

(५) इंद्रियों को घोडे कह,जो घोडे अपने अपने विषयों की ओर दौडते हैं।

कितना गंभीर उपदेश है। जितना आप इसका अधिक मनन करेंगे उतना अधिक आनंद आपको प्राप्त होगा।

यह आत्मा अपने शरीररूप रथमें बैठकर जीवन युद्धमें उपस्थित है। इसको युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करना है।

दो हाथ, दो पांव, गुदा, शिस्न और मुख ये सात कर्मेंद्रियां स्थूल सात घोडे हैं।

दो कान, दो आंख, जिव्हा, नासिका, और त्वचा ये सात ज्ञानेंद्रियां सूक्ष्म और बडे चपल सात श्वेत घोडे हैं।

इनकी दौड अपने अपने विषयक्षेत्रमें हो रही है और इनको पता नहीं कि जिसके रथको हम जोते हैं,उस महारथी वीरको कहां जाना है और क्या करना है। मन लगाम हैं परंतु वह किसके आधीन है?

बुद्धि सारथी है परंतु क्या वह अपने आधीन है? अपने ही रथमें अपनी आत्मशक्ति

बैठी है, क्या वह अपना बल बढा रही है?

पाठको! विचार तो कीजिये कि यहां हो क्या रहा है? और करना क्या चाहिये?

इस विषयमें अधिक लिखना नहीं चाहिये। हरएक अपना विचार करे और जाननेका यत्न करे कि मैं कहां और किस अवस्थामें हूं।

विचार करते ही पता लग जायगा। और उपाय भी सूझेगा।

यही आत्मोन्नतिका सीधा मार्ग है:—

विचार, मनन और ध्यान।

दलितोद्धार।

(ले.-कुंवर चांदकरण शारदा, अजमेर)

मानव पथ प्रदर्शक वेदों में कहा है:—

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्य्ये॥

१ मुझे देवों, मनुष्य देवों, अर्थात ब्राह्मणों में प्रिय बना, मुझे क्षत्रियों में प्रिय बना, मुझे सब प्राणियों का प्रिय बना, मुझे शूद्र तथा वैश्यों में प्रिय बना।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ ऋग्वेद॥

सहृदयं सांमनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः॥ अन्योऽन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभि-मिवाभितः॥ सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्सं-वननेन सर्वान्। देवाः इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ अथर्ववेद॥

यह सब वेद मन्त्र हैं। परमात्मा आज्ञा देते है कि संगठन के लिए सब मनुष्यों को चाहिए कि "इकट्ठे चला करें, इकट्ठे बोला करें, एक समान विचार किया करें. जिस प्रकार समझदार लोग सदा प्रेम से रहते है, वैसे ही सदा रहा करें!

"हे मनुष्यों! तुम सबके दिल मिले हुए हों, तुम्हारे मन मिले हुए रहें, तुममें कभी आपस में लडाई झगडा न हो. तुम सब एक दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने नये नये पैदा हुए बछडे को प्यार करती है।"

"तुम सब इकट्ठे पानी पिया करो, इकट्ठे बैठकर भोजन खाया करो, इकट्ठे मिल कर बडे बडे काम किया करो, और प्रातः सायं इकट्ठे होकर सन्ध्या हवन किया करो।"

सब इकट्ठे ही रहा करो, मकान सबके एकसे हों, जिस प्रकार देवता लोग अमृत की रक्षा करते हैं उसी प्रकार तुम एक

दूसरे की रक्षा किया करो । "

दलितोद्धार पर शास्त्राज्ञायें।

दलितोद्धार पर शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में सैकडों प्रमाण हैं । और सब प्राचीन विद्वानों की सम्मति में वर्णव्यवस्था गुण कर्म से ही मानी गई है, जन्म से नहीं।

(१) **सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा । दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र, स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥**

महा० वन० १८० अ० ॥

सचाई, दान, क्षमा, सुशीलता मृदुता, तप,दया,यह गुण जिन लोगों में हो उनको ब्राह्मण कहना और मानना अन्य को नहीं ।

(२) **तावच्छूद्रसमो, ह्येषो यावद्वेदे न जायते**

महा० वन० १८० अ० ॥

जबतक मनुष्य वेद नहीं पढ़ता तबतक वह शूद्रसम ही रहता है ।

३ **न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् । ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि. कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥**

महा० शांति १८६ अ०

चारों वर्णों में कोई भेद नहीं है, सभी के भीतर परमात्मा व्याप्त है, परमात्माने ही सब को बनाया है । जो जैसे जैसे कर्म करता है वैसा वैसा वर्ण पाता है,वर्ण कर्म के द्वारा पाता है जन्म के द्वारा नहीं ।

(४) **हिंसानृतप्रियाः लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः। कृष्णाः शौचपरि-भ्रष्टाः ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥**

महा. शान्ति १८६अ.

निरपराध प्राणियों की हिंसा, झूठ, लालच अपवित्रता आदि दुर्गुणों के होने से, हृदय में कपटी होने से, और अपनी जीविका प्राप्ति के लिये खराब से खराब अधर्म का काम भी कर डालने से, अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शूद्र बनगए हैं ।

(५) **"न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ "**

महा. शान्ति, १८६ अ.

शूद्रोंकी सन्तान शूद्र ही हों और ब्राह्मण की सन्तान ब्राह्मण ही हों, यह कोई जरूरी बात नहीं है किन्तु बदल भी सकते है ।

(६) **राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा,ब्राह्मण्यं केन भवति ब्रूहि मे तत्सुनिश्चितम् ॥ शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् । कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु केवलम् ॥**

महा० उद्योग १८०अ०

हे राजन ! जन्म,कुल,स्वाध्याय विद्या और सदाचार में से किससे आदमी ब्राह्मण होता है । उत्तर यह है कि जन्म से वा कुल से कोई ब्राह्मण नहीं होता और नहीं किसी और कारण से होता है,केवल सदाचार से आदमी ब्राह्मण होता है ।

(७) **शूद्रोप्यागम संपन्नो द्विजो भवति संस्कृत , ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसंकर भोजनः स ब्राह्मण्यं**

समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः।
ब्रह्मपुराण २२३ अ.

विद्या पढकर और सदाचारी बनकर शूद्र का पुत्र भी ब्राह्मण हो जाता है और इसीप्रकार विद्या और सदाचार छोड देने से तथा अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से ब्राह्मण का पुत्र भी शूद्र होजाता है।

(८) **शूद्रोऽपिद्विजवत्सेव्यः स्वयं ब्रह्माब्रवीदिदम्।**
ब्रह्मपुराण अ० २२३

यह ब्रह्मा ने कहा है कि सदाचारी होने से शूद्र भी शुद्ध होता है और ब्राह्मण की तरह पूजनीय होता है।

(९) **कर्मणा क्षत्रियत्वं च वैश्यत्वं च स्वकर्मणा।**
दे. भा. स्कं ६ अ. २८.

क्षत्रिय और वैश्य भी कर्म से होते हैं जन्म से नहीं,

(१०) **न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न। न शूद्रो नापि वै म्लेच्छो भेदता गुणकर्मभिः। शुक्रनीति।**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और म्लेच्छ अपने जन्म से कभी कोई नहीं होता। किन्तु गुणकर्मानुसार लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व म्लेच्छ हुआ करते हैं।

(११) **जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते। वेदाभ्या- साद् भवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः॥**

जन्म से सभी शूद्र पैदा होते हैं, परन्तु पीछे से संस्कार वेदाभ्यास और ब्रह्मज्ञान के द्वारा मनुष्यक्रमशः द्विज, विप्र और ब्राह्मण बनता है।

(१२) **धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरि बृंहणः। ते शिष्टाः ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥**
मनु० १२-१०९

जिन्होंने धर्माचरणपूर्वक वेद का अध्ययन किया है वे ही सदाचारी पुरुष ब्राह्मण कहाते हैं और कोई अन्य नहीं।

(१३) **शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मण- श्चैति शूद्रताम् क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च। मनु१०-६५॥**

अच्छे काम करने तथा पढने से शूद्र कुलोत्पन्न पुरुष भी ब्राह्मण हो सकता है और बुरे काम करने तथा विद्या आदि को न पढने से ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष भी शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्यों को भी जान लेना। अर्थात् पुरुष चाहे किसी भी कुल में पैदा हुआ हो वह जिस जिस वर्ण के अनुकूल काम करता है उसे उसी वर्ण में गिनना और मानना चाहिए।

(१४) **अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जाति- परिवृतौ। धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ।**

यह महर्षि आपस्तम्ब की आज्ञा है कि अधर्म का आचरण करने से ऊंचे कुल में पैदा होने वाले भी नीचे नीचे

वर्ण के हो जाते हैं । और वह उसी वर्ण में गिने जावें जिसके कि वे योग्य हों । इसी प्रकार उत्तम विद्या और धर्माचरण द्वारा शूद्र आदि कुल में पैदा होनेवाले भी ब्राह्मण आदि ऊंचे वर्ण को पा सकते हैं, और अपने योग्य वर्ण ही में गिने जावें । इस प्रकार शास्त्रों में इसके लिए हजारों प्रमाण भरे पड़े हैं, जिनसे स्पष्ट विदित होता है कि जो जो विद्यावान् और सदाचारी हों, उन उन मनुष्यों को ब्राह्मण मानना । जो बहादुर योद्धा हों उन उन मनुष्योंको क्षत्रिय समझना । जो किसी तिजारत व्यापार तथा दुकानदारी आदि द्वारा अपना और अपने देश का धन का बढाने में लगे हों उन उन आदमियों को वैश्य कहना । इसीप्रकार जो लोग अपने शरीर के श्रम द्वारा ही जनता की सेवा करते हों उन्हें शूद्र जानना ।

चारों वर्णों को सदाचारी बनाना चाहिए। चारों ही परमात्मा के पुत्र होने के कारण परस्पर सगे भाइयों की तरह प्यार से रहें । कोई किसी को छोटा न समझे । समाज में चारों की अत्यन्त आवश्यकता है । कोई अछूत नहीं है । सभी को छूना चाहिए । किसी से घृणा करना महा पाप है । सब सड़कों पर चलने का सबको अधिकार है । सब कुओं पर चढने का सबको अधिकार है। सब मन्दिरों में जाने तथा वहां पूजा पाठ दर्शन आदि करने का सबको अधिकार है । वेद पढने यज्ञ हवन करने का सबको अधिकार है । किसी के छू लेने से रोटी और पानी भ्रष्ट नहीं होजाता । खाना पीना चारों वर्णों का इकट्ठे होना चाहिए । शूद्र के साथ बैठकर खाने व उसके हाथ का भोजन व जल खाने पीने से कोई शूद्र नहीं हो जाता ।

अवश्यं भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते ।

महा० शान्ति पर्व

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, और वैश्यों को चाहिए कि शूद्रों (केवल शारीरिक श्रम कुलीगीरी आदि करने वालों) के लिए जीविका का उत्तम प्रबन्ध करें। उनको वेतन अच्छा मिलना चाहिये ताकि वह और उनका परिवार आनन्द से खा पी सकें, क्योंकि अन्य लोग तो तरह तरहके अन्य काम भी कर सकते हैं पर निर्बुद्धि होने से जो शूद्र है वह बेचारा और कौन काम करेगा! अतः द्विजों का परम कर्तव्य है कि अपने सेवकों की रक्षा और पालन का पूरा प्रबन्ध करें । और दलितोद्धार में दत्तचित्त होकर लगे और दलितोद्धारक यह व्रत लें कि हम कभी भी दलितों से घृणा नहीं करेंगे ।

कवि ने क्या ही अच्छा कहा है: —

वही है वीर जो पूरा करे इकरार दुनियां में । नहीं तो सैकड़ों होते जलीलोख्वार दुनियां में ॥ क्या हुआ गर मर गये अपने वतन के वास्ते। बुलबुलें होतीं फिदा अपने चमन के वास्ते ॥ घटने न देना मान, करना मोह मत धन धामका । मान ही जाता रहा तो

धन रहा किस काम का ॥

इसवास्ते प्रिय भाइयों और बहिनों!यदि आप प्राचीन आर्य्य गौरव और चक्रवर्ती साम्राज्य पुनः स्थापित करना चाहते हैं तो सारी हिन्दू जाति को एक संघठन में बांधो, सब कुप्रथाओं को हटाओ और व्यायाम कर ब्रह्मचर्य का पालन कर सबसे प्रेम और भ्रातृभाव से मिलकर दलितोद्धार में पूर्ण सहायता दो और विघ्नबाधाओं को झेल कर धर्म पर कुर्बान हो।

ग्रंथ परिचय।

१ सामवेद संहिता [आग्नेय पर्व] — (संपादक—श्री सत्यचरण राय देव शर्मा। प्रकाशक—श्री. ब्रजेश्वर राय, बीडन स्क्वेअर कलकत्ता। मू. १॥)

सामवेदके प्रत्येक मंत्रका पदपाठ, अन्वय तथा छंद ऋषि आदि देकर तत्पश्चात आधियाज्ञिक और आध्यात्मिक अर्थ दिये हैं। विशेष शब्दों की निरुक्ति तथा व्याकरण भी स्पष्ट करके बताया है। सब ग्रंथ सुगम संस्कृतमें है और सामवेदाभ्यासी के लिये विशेष उपयोगी है। कागज और छपाई उत्कृष्ट है। इस पुस्तक से सामवेदका अध्ययन निःसंदेह सुगम होगा। मूल्य भी ग्रंथ के महत्वकी दृष्टिसे अत्यंत अल्प है।

२ प्राचीन हिंदी शिल्प शास्त्र सार— (लेखक और प्रकाशक-श्री. रा. सा. कृ. वि. वझे. इंजिनियर नासिक। मू. १॥)

(मराठी) इस ग्रंथमें ग्रंथ लेखक ने प्राचीन हिंदी शिल्प शास्त्र का सार संगृहित किया है। यह ग्रंथ हिंदी भाषामें उल्था करने योग्य है कोई प्रकाशक यह कार्य करेगा तो हिंदी जनतापर बडा उपकार होगा।

३ पुनर्जन्म— (लेखक और प्रकाशक-श्री. पं नंदकिशोर विद्यालंकार, हेस्टिंगस्ट्रीट, कलकत्ता).

पुनर्जन्म का सिद्धांत युक्ति प्रमाणोंसे जैसा इस पुस्तकमें सिद्ध किया है वैसा किसी अन्य पुस्तकमें किया हुआ देखा नहीं। प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य को यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है। पुनर्जन्म विषयक प्रमाण जैसे अर्थशास्त्र के

दिये हैं वैसेही पाश्चात्य वैज्ञानिक ग्रंथोंके भी प्रमाण इस पुस्तकमें दिये हैं। इस लिये यह पुस्तक अधिक उपयोगी हो गई है।

४ आर्य पर्वावली — (लेखक- श्री. पं. भवानी प्रसाद जी, हल्दौर जि. बिजनौर। मू. ।\॥)

इस पुस्तकमें हनुमान, सूरदास, शिवराज, शंकराचार्य, बुद्धदेव, गंगावतार, व्यासपूजा, तुलसीदास, विरजानंद, शरत्पूर्णिमा, दम्पति चतुर्थी, भ्रातृतृतीया, गोपाष्टमी, भीष्माष्टमी गुरुदत्तदिन, इनके पर्वोंका वर्णन है। पुस्तक अढाई सौ पृष्ठोंकी है और बडी उपयोगी है।

५ दयानंद दर्शन — (लेखक- श्री. पं. सत्यदेवजी सिद्धान्तालंकार, सिताबर्डी नागपुर। मू. ।\|)

इस पुस्तकमें लेखकने वैदिक राष्ट्रीय भावना को पुष्ट कर प्रजातंत्र राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य आदि व्यवस्थापर प्रकाश डाला है और ऋषि दयानंद के लेखोंका यथास्थान उद्धरण देकर सिद्ध कर दिया है कि राजनैतिक क्षेत्रमें भी उनके आदेश कैसे उत्तम मार्ग दर्शक हो सकते हैं।

६ शुद्धि —(ले०-श्री. कुं. चांदकरण. शारदा, अजमेर) शुद्धिके विषय में यह पुस्तक अत्यंत महत्वके विचार बता रही है।

७ हिंदुस्तान—(संरकर्ता—श्री. पं. सूर्यनारायण शर्मा आचार्य, जयपुर राजपुताना। मू. ।=) प्रकाशक—अय देव ब्रदर्स बडोदा)

श्री. मैथिली शरण गुप्ताजी का "भारत भारती" ग्रंथ सब जानते ही हैं। इस पुस्तकके " वर्तमान खंड " में जो चित्र भारत दशाका वर्णित है, उसको थोडे भावना के परिवर्तन के साथ प्रकाशित करनेका कार्य श्री. पं. सूर्यनारायणजीने किया है। शुभ संकल्प की भावनासे भारत की दशाका चित्र जैसा लिखना चाहिये वैसा इस पुस्तक में लिखा है। यदि पाठक दोनों पुस्तक तुलनात्मक दृष्टिसे पढेंगे तो विशेष लाभ उठा सकेंगे। इस अपूर्व पुस्तक के लिये हम, पं. जीका विशेष धन्यवाद करते हैं।

इनके अतिरिक्त(१)वेदका स्वाध्याय-श्री रामचंद्र शर्मा एम, ए. म. जलंधर मू. ।)(२) चित्रकूट चित्रण-श्री विद्याभूषण विभु, कलाकार्यालय, प्रयाग मू. ।=) (३) दलितोद्धार-श्री. कुंवर चरण शारदा, अजमेर मू. ।) (४) वैदिक संध्या (विनामूल्य) ला. लभ्भूराम नय्यड, आनंदाश्रम लुधियाना पंजाब। (५) सच्ची पाठ-विधि श्री. पं. युधिष्ठिर विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल, हरियाना मू. -) (६) ब्रह्मयज्ञ-पं वंशीधर पाठक, बरेली। (७) महिला-कर्तव्य— ले०. श्री. विद्यावती शारदा, सहारनपुर मू. ।=) (८) अलंकार शताब्दी अंक, अलंकार कार्यालय गुरुकुल कांगडी. जि. बिजनौर मू. ।\।) (९) शताब्दी अंक— आर्य लाहौर, आर्यमित्र आग्रा। इत्यादि पुस्तकोंका साभार स्वीकार है।

आयु-वृद्धि और श्वास।

(लेखक-श्री. पं. ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य अमृतधारा लाहौर)

इस प्रश्न पर हिन्दुस्तान में भी बहस हुआ करती है कि आयु वृद्धि हो सकती है या नहीं? दूसरे देशों के लोग इस पर बहस नहीं करते। क्योंकि वे मादि लोग हैं। जितने मुसलमानी देश हैं उनमें साधारणतया यह ख्याल है कि जीवन का घटना बढना कठिन है। हिन्दुओं में भी दो ख्याल हैं, कोई यह समझते हैं कि आयु जो निर्धारित हो चुकी उससे पलभर भी घट बढ नहीं सकती। बाज यह ख्याल करते हैं कि ईश्वर ने हमको पैदा करके स्वतंत्र किया है। आयु घटाने बढाने का भी हमको अधिकार है। इस प्रश्न पर यदि हम विस्तार के साथ विचार करें तो बडा स्थान चाहिये। इतना अवश्य कहेंगे कि यदि ध्यान से देखाजाय तो भी मालूम होता है कि मनुष्य अपने आचरणों से अपनी आयु को घटा भी सकता है और बढा भी सकता है। जो लोग यह मानते हैं कि परमेश्वर ने हमको एक निर्दिष्ट समय तक के लिये इस संसार में भेजा है वे भी ९९ फीसदी ऐसा मानते हैं कि 'अवधि' सालों में निर्धारित नहीं है बल्कि श्वासों के साथ सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन के सांस निर्दिष्ट हैं। यही कारण है कि योगी लोग प्राणायाम द्वारा अपने सांस बहुत कम खर्च करते हैं और सैकडों वर्ष तक जीते रहते हैं। इस बात से मालूम हुआ कि यदि कोई मनुष्य अपनी सांस जल्दी जल्दी खर्च करता है तो अपेक्षाकृत कम समयों में अपने सांस पूरे कर लेता है, परन्तु यदि वह अपने सांस थोडे खर्च करता है तो वह अपनी आयु को बढा सकता है भारत वर्ष के योगी इस प्रकार कथन करते हैं। इसमें कुछ कुछ मत-भेद भी है। बाज योगी ख्याल करते हैं कि जितनी देर सांस बंद रहता है, केवल वही कमी है। यदि सांस आता रहता है परन्तु वैसे ही लम्बा हो जाने से दिन भर में उसकी संख्या कम हो जाती है। तब यह जीवन की दीर्घता पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता है। मनुष्य को साधारणतः दिन भर में २१६०० श्वास आते हैं। यदि कोई आदमी गहरे सांस लेने की आदत डाले तो यह संख्या दस, पन्द्रह तक आजाती है। योगी लोग कहते हैं कि इससे यद्यपि तन्दुरुस्ती बढती है, बुढापा नहीं आता है, परन्तु इससे आयु पर प्रभाव नहीं पडता है, क्योंकि चाहे लम्बी सांस हो, हर समय जारी तो है। हां, यदि सांस को बिल्कुल बंद कर लिया जाय तो उतने समय में जितने सांस आने चाहिये थे, उतनी बचत उसकी होगी। सांस के साथ आयुका सम्बन्ध इस प्रकार भी माना जाता है कि सांस जितना लम्बा बाहर निकलता है उतनी ही आयु घटती है इसी

वास्ते बाज योगी जो 'ओ ३ म्' या 'सोहं' का जप करते हैं सांस को इतना सूक्ष्म कर लेते हैं कि वह बाहर जाता हुआ मालूम नहीं होता है। कहते हैं इससे भी आयु बढती है और जीवन स्थिर हो जाता है, अर्थात् बुढापा नहीं आता है।

साधारणतः मनुष्य जो सांस लेता है वह १२ अंगुल बाहर जाता है और १० अंगुल भीतर जाता है। बीमारी में, निद्रा में अधिक बोलने में और ऐसे ही स्त्री प्रसङ्ग आदि के समय उसकी लम्बाई बढ जाती है, इसलिए ये सब चीजें आयु को घटाने वाली हैं ॥

व्यायाम के समय भी सांस लम्बा हो जाता है। यद्यपि ऐसी विधियां भी हैं जिससे व्यायाम करने पर भी उसको वश में रक्खा जा सकता है। परन्तु व्यायाम को इस वास्ते आवश्यक कहा गया है कि इससे यद्यपि उस समय सांस तेज हो जाता है परन्तु बाकी रात दिन के वास्ते सांस नियमित और सूक्ष्म हो जाता है, इससे स्वास्थ्य बढता है जिसका असर सारे जीवन पर रात दिन रहता है। इस वास्ते व्यायाम के समय थोडा ज्यादा खर्च करके भी पीछे खजाना जमा होता रहता है ॥

वास्तव में भारतवर्ष के योगियों ने श्वास विद्या को बहुत अच्छी तरह जाना है। विलायत के लोग हिन्दुस्तान में आकर जंगलों और बनों में वर्षों तक फिरते हैं और ऐसी बातें यहां के योगियों से सीख कर घर जाकर बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखते हैं। और लाखों रुपया कमाते हैं, और हमारे यहां के लोग उन्हीं पुस्तकों को पढ़कर वाह वाह करते हैं, मगर सोचते नहीं हैं कि जिन योगियों से उन्होंने सीखा है, वे हमारे ही देशमें रहते हैं, कभी हम उनको ढूंढने का विचार भी नहीं करते।

मनुष्य जो सांस लेता रहता है, वह दोनों नथुनों से नहीं बल्कि एक नथुने से आता रहता है।

जब कभी कोई मनुष्य देखे उसका एक नथुना चलता होगा। दूसरे नथुने से न मालूम सांस आता है। जब एक नथुने से दूसरे नथुने में सांस बदलने लगता है, तब थोडी देरके लिये दोनों नथुनों से चलता है, उस समय सास सूक्ष्म होता है, और सांसारिक कार्यों की अपेक्षा ईश्वर की याद में उस समय मन अधिक लगता है।

दाई तरफ से जब सांस चलता है, तब उससे शरीर के भीतर गरमी पैदा होती है, जब बाईं तरफ से आता जाता है, तब उससे सर्दी पैदा होती है।

इस लिये शरीर की गर्मी और सर्दी को योगी सांस बदलकर घटा बढा लेते हैं।

अगर किसी आदमी को एकही तरफसे सांस चलता रहे तो वह जिन्दा नहीं रह सकता है।

मुझे एक आदमी की बाबत मालूम है जिसके केवल दायां सांस अज्ञातरूप से चलता रहा होगा। कब उसकी हालत

यह है कि दायें नथुने में हर वक्त रूई रख कर उसको अपना बायां सांस ही चलाना पड़ता है। चंद दिनों की बात है कि रात को दायें नथुने की रूई निकल गई,न मालूम कितनी देर दायें से सांस लिया होगा। उसके शरीर में आग लग गई। उसी वक्त उठ बैठा। दो दिन तक ऐसी बुरी हालत रही कि वर्णन नहीं कर सकते। सुबह उठ कर दो सेर बीह का मुरब्बा खाया, लेकिन फिर भी शरीर के भीतर शान्ति न होती थी, मूत्र बंद न होती थी, दाह इतना अधिक था कि कभी किसी ने इसकी कल्पना भी न की होगी। वह बीमार कहा करता है कि यदि दैव योग से मेरा दहिना नथुना पक जाय और मैं उसमें रूई दाब कर न दे सकूं तो फिर शायद मैं मर जाऊं। अब मुद्दतों से इसी हालत में है। साधारण चिकित्सक सांस की इस ताकत को समझ ही न सके। उनके पास ऐसा रोगी हजारों ठंडी दवाइयां खाकर भी राजी नहीं हो सकता।

योगी लोग इस सांसको अपने वश में कर लेते हैं। वह जिस तरफ का सांस चाहे, उसी तरफ का चलता है और उसको खूब काबू करके वे बीमारियों से सुरक्षित रह सकते हैं और आयु को बढाते हैं।

भोजन करने, पाखाना जाने और नहाने वगैरह के समय वे दायां सांस चलाते हैं। पानी पीने और पेशाब करने वगैरह के समय बायां सांस चलाते हैं।

उनका यह कथन है कि अगर कोई मनुष्य स्वाभाविक रूपसे घंटे घंटे बाद बदलते रहने की बजाय, सांस को वश में कर के, दिन भर बायां सांस चलाये, और रात भर दायां चलावे, तो इससे उसकी आयु बढ जाती है और तन्दुरुस्त रहता है।

रातको यदि केवल बाईं करवट सोया जाय, तब दायां सांस चलता रहता है। रात को ज्यादा देर चलने के कारण, दिन को ज्यादा देर बायां निसर्गतः चलता रहता है।

योगी लोग थोडा सोते हैं, मगर जितनी देर सोते हैं बायें करवट सोते हैं। सांस वश में लाने की एक विधि है, जिस से जो सांस चाहो फौरन चलने लगेगा। इसके वास्ते एक महीना तक सांस का एक अभ्यास ४ बार दिन रात में करना चाहिये, हर वक्त लगभग आध घंटे के लगेगा।

अभ्यास की रीति संक्षेप में यह है कि सुबह, दोपहर, साम आधी रात चार बार दिन में १०-१० प्राणायाम किये जावें। वह इस तरह कि एक तरफ से सांस लेकर अंदर रोक कर दूसरी तरफ से निकाल दिया जावे। फिर उस तरफ से लेकर अंदर रोक कर पहली तरफ से निकाल दिया जाय। जो प्राणायाम विधि से अवगत हैं वे इतने से समझ जावेंगे।

दूसरों को शुरू करने से पहले, किसी गुरु से समझ लेना चाहिये।

वैदिक वर्ण व्यवस्था।

(लेखक -श्री. रामशरण विद्यार्थी.)

(पूर्व अंकसे समाप्त.)

जो पुरुष आर्य नहीं है अर्थात् व्रत का पालन नहीं करते, वह दस्यु, दासादि हैं। जिन पुरुषों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य तथा शूद्र-इन चारों योग्यताओं में से किसी योग्यता को भी धारण नहीं किया वह पतित, अनार्य और दण्डनीय हैं। (यहां पर एक बात हमारी समझ में नहीं आती कि अनेक विद्वानों ने शूद्र को किस प्रकार अनार्य,अनपढ और पतित कह दिया। वास्तव में यह बात विचारने योग्य है। यह बात भी हमारी बुद्धि से बाहर है कि पंतित ब्राह्मण को अनेक विद्वानों ने शूद्र कैसे कह दिया। शूद्र का भाव पतित से कैसे लिया जाने लगा, जब कि शूद्र के लिये भी निश्चित कर्म शिल्पविद्या पाकविद्यादि का अध्ययन और सेवन वर्णित है। शूद्र की उन्नति के लिए प्रार्थना अनेक वेद मन्त्रों में की गई है। जहां तक हमारा स्वाध्याय सीमित है, शूद्र को दण्डनीय कहीं भी नहीं कहा गया, अतः उसको आर्य मानना चाहिए। वैदिक धर्मावलम्बी विद्वानों को इस विषय पर अवश्य विचार करना चाहिए) यदि कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र योग्यता सम्पन्न पुरुष अपनी योग्यताके अनुकूल कार्य नहीं करता, तो वह दस्यु, अव्रती आदि होनेके कारण दण्डनीय है। इस प्रकार ब्राह्मणादि योग्यता धारण करने वाला पुरुष अपना अपना वर्ण (choice of profession) स्वयं चुन लेता है। यथा यदि किसी ने युद्धविद्यामें कुशलता प्राप्त की है तो वह अपनी योग्यता के अनुसार सेनापति, राजा, और उपसेनापति आदि अपनी योग्यता की परीक्षा देकर हो सकता था। वह राजा, सेनापति उपसेनापति नाम से पुकारा जाता था। अपनी 'क्षत्रिय' योग्यता के कारण लोग उसे क्षत्रिय कहते थे और समझते थे कि इसका स्थान समाजशरीरमें बाहु का स्थान है। वास्तव में ऐसा विदित होता है ब्राह्मणादि वेदों में वर्ण (profession) सूचक शब्द नहीं है, उनसे तो योग्यता का ग्रहण करना उचित है। जैसे

कि पश्चिम में संमति- B. A. B. com. आदि कोई वर्ण नहीं किन्तु योग्यतानुसार पदवियां हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण वैश्यादि भी पदवियाँ अर्थात योग्यता के सूचक शब्द हैं। B. A. बी. ए. की योग्यता वाला जैसे आजकल अध्यापक, राजमन्त्री, और क्लार्क आदि हो सकता है इसी प्रकार ब्राह्मण योग्यता वाला भी अध्यापक,राजमन्त्री आदि हो सकता है। व्यापार, बैङ्क आदि के कार्यों में जैसे(B.com) बी. कॉम. पदवी प्राप्त पुरुष अपनी अपनी न्यूनाधिक योग्यता के कारण व्यापारी, बैङ्क का प्रबन्धकादि वर्ण (profession) चुन लेता है। इसी प्रकार वैश्य पदवी प्राप्त अर्थात् वैश्ययोग्यता वाला पुरुष व्यापारी, श्रेष्ठि—प्रबन्धकादि हो सकता है। मुख्यवर्णों (profession) की संख्या एक यजुर्वेद के तीसवे अध्याय में ही १०० से ऊपर दी है। इस प्रकार विचार करने से यह समझ में नहीं आता कि ब्राह्मणक्षत्रियादि वर्ण किस प्रकार कहे जाने लगे। विद्वानों ने इनसे व्यवसायात्मक शब्दों का भाव किसप्रकार ग्रहण कर लिया। विद्वानों को इस पर विचार करके यथेष्ट समाधान करना चाहिए। यदि कोई वर्ण शब्द का अर्थ देखे तो इसके लिए निरुक्त "वर्णो वृणोतेः" अ.२।खं.३देखना उचित है जिससे प्रकट होता है कि चुनने अर्थ में वर्ण शब्द आया है अर्थात् व्यवसाय का चुनना (choice of profession or occupation)

उक्त सारे वर्णों के मनुष्यों को चाहिए कि वेदादि बहुत विद्या अवश्य पढ़ें। विद्या बिना मनुष्य पुच्छविषाण हीन पशुके तुल्य होता है। किसी को विद्या पढने का अधिकार नहीं देना, घोर पाप करना है। वेदों में अनिवार्य शिक्षा(compulsory education) देने का उपदेश है। यदि यह कहो कि दुष्टों को विद्या नहीं पढानी चाहिए, तो यह समझ में नहीं आता कि वे भला वह अपना उपकार कैसे कर सकते हैं। वेदों में तो अनिवार्य शिक्षा का ही उपदेश दिखाई देता है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ यजुर्वेद २६। २॥

(यथा+इमाम्+कल्याणीं+वाचं+जनेभ्यः आवदानि) जैसे इस कल्याणकारी वाणी रूप वेद को सब मनुष्यों के लिए उपदेश करता हूं, वैसे आप भी करें (ब्रह्म+ राजन्याभ्याम् शूद्राय च+आर्याय च+स्वाय च+ अरणाय च) ब्राह्मण, क्षत्रिय,शूद्र, वैश्य अपने प्यारे, और दस्युओं को भी विद्या पढाओ। (अदः मा× उपनमतु) यह मेरा वाक्य वृथा न जाय। (इह+ इयं+मे+कामः) इस लोक में मेरी यह इच्छा पूर्ण हो। (देवानां+प्रियः+भूयासम्) तुम में से बडे बडे विद्वानों में मैं प्रिय होऊं और (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा देने वाले धनाढ्यों में भी।

इस मन्त्रमें निम्न लिखित भाव व्यक्त होते हैं।

करेंगे। संसार में चार प्रकार की योग्यता होती है। यह वैदिक भाव है। विद्वान् लोग यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र पद देंगे। अपनी अपनी योग्यता के अनुसारही वे अपना अपना वर्ण (Choice of profession.). कर लेंगे। वैदिक धर्मावलम्बी आर्यों को चाहिए कि अपने विश्वविद्यालय बना कर उनमें प्रदत्त पदवियों के नाम ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र रखें। यदि इस प्रकार का कोई विश्वविद्यालय न हो तो व्यवस्था के अभाव में वैदिकादर्श का पूर्ण होना कठिन जान पडता है। तथा इन पदोंसे किसी को सम्बोधित करने में गडबड होनेकी आशङ्का है।

ब्राह्मणादि पदवी से सम्पन्न आर्य जन अपनी अपनी योग्यता के अनुसार व्यवसाय चुन सकते हैं। अनेक वर्णों का विवरण यजुर्वेद में दिया है, जिसका सम्पूर्ण ३० अध्याय इसी वर्णन से भरा पडा है। बुद्धि और युक्ति के अनुसार उन सब वर्णोंको भिन्न भिन्न पदवीके अन्तर्गत विभक्त कर सकते हैं। कुछ ऐसे कार्य भी हैं जिनको सभी योग्यता के पुरुष प्राप्त कर सकते हैं। इस अध्याय में २२ मन्त्र हैं। विद्वान् पुरुषों को चाहिए कि उक्त अध्याय पर विचार करें। (स्वाध्यायमंडल प्रणीत इस अध्याय की व्याख्या देखिए) इस अध्याय में वर्णित वर्णों के आधार पर हम अपनी बुद्धिके अनुसार ब्राह्मणादि योग्यता प्राप्त पुरुषों को निम्न लिखित विभागों से सम्बन्ध रखने वाले वर्ण (occupation) अपने अपने लिए निश्चित करने चाहिए।

(१) ब्राह्मण.

(क) शिक्षाविभाग (Educational Department).

(ख) न्याय विभाग (Legal Department).

(ग) नियम विभाग (Department of Legislature).

(घ) योग विभाग (Department of physico-spiritual culture).

(ङ) नागरिक शासन विभाग (Civil administration).

(२) क्षत्रिय.

(क) सेना तथा नगर पालन विभाग (Militari and Police Department).

(ख) राजनीति विभाग (Political diplomacy).

(ग) अरण्य विभाग (Forest department).

(३) वैश्य.

(क) व्यापार विभाग (Commercial department).

(ख) कृषि विभाग (Agricultural department).

(ग) श्रेष्ठि विभाग (Banking department).

(घ) गोरक्षा विभाग (Department for protecting domestic animals).

(ङ) स्वास्थ्य विभाग (Department of public health).

(च) कोष विभाग (Department of

account & treasury)

(४) शूद्र

(क) शिल्प विभाग (Architecture).

(ख) मजदूर विभाग (Labourer).

(ग) पाक विभाग(Food cooking).

(घ) कौशल्य विभाग (Arts men & Craftsmen, goldsmith etc)

उपरिलिखित विभाग केवल सङ्केत-मात्र विचार के लिए लिखा गया है । विद्वान् लोग इस पर विचार करें । इस प्रकार चारों प्रकार की भिन्न भिन्न योग्यता वाले भिन्न भिन्न पुरुष वा जन-समुदाय अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपने अपने वर्ण (choice of profession को) यदि अपनी योग्यताका ध्यान नहीं देंगे तो अवश्य समाज से दण्डनीय होंगे । उनके लिए जो न्याय के नियम हैं उन के अनुसार उनको दण्ड दिया जाना चाहिए । यदि कभी मनुष्य ने अपना एक वर्ण निश्चितकर लिया है उसको उचित है कि वह अपने वर्ण का ही कार्य करता रहे जिससे वह उस कार्य में पूर्ण कुशल हो जावे । वह चाहे तो अपना वर्ण परिवर्तन कर सकता है परन्तु उसको अपनी योग्यता का ध्यान अवश्य करना होगा । यह नहीं कि ब्राह्मण योग्यता वाला क्षत्रिय हो जाय अर्थात् जिसने युद्ध विद्या सीखी नहीं, वह सेना में भर्ती हो जाय । सेना में भर्ती होने के लिये उसको योग्यता प्राप्त करनी होगी । यदि समाज में कभी विशेष आवश्यकता आ पड़े तो सभी योग्यता के पुरुष क्षत्रिय योग्यता को न्यूनाधिक प्राप्त कर सेना में कार्य कर सकते हैं, किन्तु अनावश्यकता के समय ऐसा करना दण्डनीय होना चाहिए इस प्रकार के नियम का उल्लङ्घन करने वाला वर्णसङ्कर और अव्रती होगा, जिसके लिए वेद में दण्ड देने का विधान है । समाज की सामान्य दशा में अपने अपने वर्णों को एक वार चुन कर उनमें ही कुशलता प्राप्त करनी चाहिए.

वर्णाय अनुरुधम् ॥ यजुर्वेद अ० ३०।९

अपने वर्णों के अनुकूल काम करने से उन्नति होगी । आज कल भी यदि कोई फौज का सिपाही व्यापार करने लगता है तो वह दण्डनीय होता है । इसका यह कारण है कि अपना ध्यान दो ओर कर के समाज को हानि पहुंचाता है । यदि उसका ध्यान एक ही केन्द्रपर होगा तो वह उसमें अति कुशलता प्राप्त कर सकता है ।

मनुष्यों को उचित है कि वैदिक धर्मानुसार अपना अपना आचरण कर उन्नति करें। वर्ण-विभाग के कारण कोई छोटा बडा नहीं है अतः सब मनुष्यों को चाहिए कि भेद भाव तथा पैरों को छोड कर पारस्परिक द्वेष को दूर कर दें ब्राह्मण के विषय में यह कहना उचित है कि पूर्णविद्वान् को ही ब्राह्मण पदवी मिलेगी ।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णस्थ आर्य विद्वान् और साधारण पढे,लिखे भी हो सकते हैं । शिक्षा की अनिवार्यता में यह तो समझना ही चाहिए. कि सभी थोडे बहुत पढे लिखे होंगे । दूसरों की रक्षा करने

वाला अपने गुण, कर्म की योग्यता के कारण सेनापति और साधारण चौकीदार भी होता है। वैश्य योग्यता वाला बडा श्रेष्ठि विभाग में निपुण और साधारण व्यापार, कृषि और गोरक्षा करने वाला भी हो सकता है। कठिन तपस्या के कार्यों को करने वाला शूद्र योग्यता प्राप्त मनुष्य बडे बडे तोपादि शस्त्रों का बनाने वाला, विद्युत् के अनेक आविष्कार करने वाला गगना रोही प्रासाद निर्माण करने वाला बडा विद्वान् भी हो सकता है और न्यून विद्या के कारण साधारण लोहकार, चर्मकार और मिट्टी ढानेवाला भी हो सकता है।

ब्राह्मण पदवी तो उसे ही मिलेगी जो पूर्ण विद्वान् हो। ब्राह्मणों में कोई भी विद्याविहीन नहीं होना चाहिए क्यों कि उस समस्त विभागों में विद्या का काम पडता है। विशेष विद्यासे रहित कोई भी ब्राह्मण नहीं हो सकता। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र योग्यता धारण करने वालों में बडे बडे विद्वान् और साधारण पढे लिखे भी हो सकते हैं। वेद के इस अभिप्राय को यदि समझा जावे तो सारे संसार की उन्नति हो सकती है अनेक विद्वानों ने शूद्र उसको कहा है जो अनपढ है। यह बात समझ में नहीं आती। विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिये। पढानेसे सभी कुछ न कुछ पढ जाते हैं।

शूद्र शब्द का अर्थ एक विद्वान् ने किया है "(शु) क्षिप्रं उन्दति" (शु) अर्थात् पसीने से जो 'क्षिप्र' शीघ्र भीग जावे वह शूद्र है। इस अर्थ के ग्रहण करने में कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि 'शु' शब्द निघण्टु २। १५ में क्षिप्र नामों में लिखा है। श्रुति वाक्य "तपसे शूद्रम् ॥ ॥ यजु० ३०।५॥" से भी यह अर्थ स्पष्ट विदित होता है। "शुचा प्रवति" दुःख से गमन करता है—यह भी अर्थ विद्वानों ने किया है, परन्तु वेद में शूद्रका महत्त्व बडा भारी लिखा है, अतः शोक दुःख के साथ उसका सम्बन्ध बताना ठीक नहीं मालुम होता।

(शु + उत + द्रा) शीघ्रता के साथ उन्नति के लिए प्रयत्न करता है इस शूद्र शब्द के अर्थ परभी विद्वानों को विचार करना चाहिए। लौकिक संस्कृत के कोशोंमें अवर्वर्ण, वृषल, जघन्यज आदि ह ६ ८ शूद्र के पर्याय वाची दिये हैं। इन अर्थों में कोई वैदिक भाव दिखाई नहीं देता।

चारों प्रकार के मनुष्यों को समानाधिकार है। ब्राह्मणादि चारों प्रकार के मनुष्य अपनी न्यूनाधिक विद्या के कारण परस्पर एक दूसरे का मान करेंगे और उनमें आत्मिक बलभी न्यूनाधिक होगा। यह वैदिक व्यवस्था विदित होती है। हे विद्वानो! इस प्रकार परस्पर वेदाशय को विचार कर संसार में मनुष्यों का कल्याण कर उनको उन्नति के पथ की ओर ले चलो। हे ईश्वर! हम सब एक दूसरे के सहायक बन जाय।